Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :9.014(2025); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parametres of UGC by IJMER)
Volume:14, Issue:8(4), August, 2025
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed : Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available : www.ijmer.in

मेल-राग वर्गीकरण से थाट राग वर्गीकरण की यात्रा:एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. दीपिका लोगानी त्रिखा

सह प्राध्यापिका - संगीत वादन

पं. जे.अल.अन.गॉवर्नमेंट कॉलेज फरीदाबाद

सार-संक्षेप

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग वर्गीकरण के संबंध में नित नवीन प्रयोग की परंपरा सदैव से चली आ रही है। संगीत रत्नाकर के पश्चात राग वर्गीकरण की तीन प्रणालियाँ अस्तित्व में आईं- राग-रागिनी वर्गीकरण, मेलराग वर्गीकरण तथा रागांग वर्गीकरण । प्रस्तुत शोध पत्र में मेल राग वर्गीकरण के उद्गम एवं विकास यात्रा का ऐतिहासिक विश्लेषण किया जा रहा है । लगभग 14 वीं शताब्दी से लेकर 17 वीं शताब्दी के मध्य अनेकों दाक्षिणात्य एवं उत्तर भारतीय संगीतशास्त्रियों ने "मेल" प्रणाली पर कार्य किया है व अपने समय के प्रचलित रागों को मेलो में विभाजित किया है, मेल प्रणाली की यह संरचना गणितीय और तार्किक दृष्टि से अत्यंत सुगठित सिद्ध हुई। इस परिप्रेक्ष्य में, 20वीं शताब्दी के आरंभ में पंडित विष्णुनारायण भातखंडे द्वारा प्रतिपादित "थाट प्रणाली" ने उत्तर भारतीय रागों के वर्गीकरण को एक नई दिशा दी। थाट प्रणाली में रागों को दस मुख्य थाटों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया, जो व्यावहारिक रूप से गायन-वादन की परंपरा में अधिक उपयुक्त सिद्ध हुए हैं। प्रस्तुत शोध में मेल से थाट प्रणाली तक की यात्रा का अवलोकन किया जा रहा है, जिसके लिए शोध की तुलनात्मक, समीक्षात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह अध्ययन संगीत के विद्यार्थियों, अध्यापकों और शोधकर्ताओं के लिए थाट-राग वर्गीकरण की प्रक्रिया, विकासक्रम, सीमयों, अभावों तथा चुनौतियों को समझने में लाभप्रद सिद्ध होगी ।

मुख्य शब्द : मेलराग, थाट, विद्यारण्य, व्यंकटमुखी, भातखंडे

शोध-पत्र

1. भूमिका :

संगीत एक सतत परिवर्तनशील कला है। समय के परिवर्तन के साथ साथ संगीत में भी निरन्तर नवीन प्रयोग होते रहे हैं, इसी परिवर्तनशीलता के कारण ही प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक आते-आते संगीत में बहु परिवर्तन परिलक्षित होता है । आधुनिक युग में जिसे हम थाट- पद्धति के नाम से जानते है। उसी का पूर्वरूप मेल पद्धति कहा जा सकता है। ग्राम-राग, देशी-राग वर्गीकरण के पश्चात् जो अनेक वर्गीकरण पद्धतियाँ एक साथ प्रचलित हुईं, उनमें मेल राग वर्गीकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण है कि यह अपने आप में विभिन्न नवीन स्वरावलियों को समाहित करने की अद्भुत क्षमता रखती है। मध्यकाल में राग-रागिनी वर्गीकरण पद्धति के साथ-साथ मेल पद्धति का भी विकास हुआ। समकालीन राग-रागिनी वर्गीकरण यद्यपि कितना भी श्रद्धेय हुआ तथापि तुलनात्मक दृष्टि से थाट-राग वर्गीकरण ने इसे बहुत पीछे छोड़ दिया।

2 मेल की परिभाषा, उद्गम एवं विकास

इस वर्गीकरण को मुख्य रूप से तीन नामों से संबोधित किया गया है-मेलराग, थाट राग और संस्थान राग। “मेल का भाव है – एकरूपता के आधार पर किए गए अनेक वर्ग। मेल के अनुसार अभिधार्थ है-मिलाना। जिसका भाव यह ग्रहण किया जा सकता है- सम स्वरावलियों के वर्ग निर्धारित करना। संस्थान का अभिधार्थ और भावार्थ दोनों इसी के बोधक हैं। सम+स्थान अर्थात् एक समान स्वर रूप । यही भाव इससे भी लिया जा सकता है। इसके अनुसार दोनों पर्याय हो सकते हैं। थाट का ठाठ अपभ्रंश रूप है। इसे बहुप्रयोग के कारण ग्रहण कर लिया गया है। ठाठ बाँधना अर्थात् आवश्यकतानुसार वाद्यों का स्वरीकरण । बोलचाल की भाषा में गुणीजनों को यही अभिप्रेत रहा है। इसी कारण येनकेन प्रकारेण प्रयोग बाहुल्य के कारण ही सही, थाट को भी मेल का पर्याय माना जा सकता है।”[i]

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :9.014(2025); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parametres of UGC by IJMER)
Volume:14, Issue:8(4), August, 2025
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed : Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available : www.ijmer.in

इस सन्दर्भ में यदि कर्नाटक संगीत की पृष्ठभूमि को हम ध्यान से देखे तो यह पायेंगे कि मेल वर्गीकरण ही उनके संगीत का आधार है। कर्नाटक संगीत में राग वर्गीकरण कई प्रकार से प्रचलित है परन्तु जनक-जन्य वर्गीकरण सबसे उत्तम एवं मान्य है। यहाँ सबसे पहले हमारे लिए यह जानना उचित होगा कि जन्य राग किसे कहते हैं। जन्य राग - ''मेल से उत्पन्न हुए रागों को ही जन्य राग कहा जाता है क्योंकि उनके गायन एवं वादन मात्र से ही मेल (जनक) राग का ज्ञान होता है।''[ii]

बन्द्योपाध्याय की इस परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि मेल से उत्पन्न होने वाले रागों को जन्य राग कहा जाता है।

इसके पश्चात जनक की परिभाषा जानना भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। श्रीपद बन्दोपाध्याय के पारिभाषिक शब्दकोष 'संगीत-भाष्य' में जनक की परिभाषा इस प्रकार दी गई है -

संगीत के प्रचलित मेलों को ही जनक मेल कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक मेल से ही रागों की उत्पत्ति होती है। रागों के जनक होने के कारण ही जनक मेल व जनक कहा गया है।''[iii]

श्री पद बन्दोपाध्याय द्वारा दी गई जनक एवं जन्य की परिभाषा से यह लक्षित होता है कि जनक, जनक मेल या मेल राग एक ही शब्द 'मेल' के पर्यायवाची हैं एवं जन्य उनसे उत्पन्न जन्य राग है। जिस प्रकार उत्तर भारतीय संगीत में थाट के अन्तर्गत वर्गीकृत रागों को जन्य राग कहते हैं एवं उनके जनक को थाट कहते हैं।

3 मेल पद्धति की ऐतिहासिकता

जिस समय मेलराग वर्गीकरण का आरम्भ हुआ तब उत्तर और दक्षिण भारत की संगीत पद्धतियों में विभाजन की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। इसलिए दोनों ही संगीत-प्रणालियों के मेलराग वर्गीकर्ताओं के ऐतिहासिक क्रमानुसार पृथक्-पृथक् विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

3.1 दक्षिण भारत के मेलवादी ग्रंथकार :

दक्षिण भारत के मुख्य पाँच ग्रन्थकारों ने मेल पद्धति पर मुख्य रूप से कार्य किया है, वे हैं -14वीं शताब्दी के विद्यारण्य स्वामी, जिनको इस पद्धति का जन्मदाता माना जाता है, इनके पश्चात् 16वीं शताब्दी के रामामात्य, 17वीं शताब्दी के पं० सोमनाथ व पं० व्यँक्टमुखी एवं 18वीं शताब्दी के राजा तुलजाजीराव भौंसले के नाम उल्लेखनीय हैं ।[iv]

सर्वप्रथम मेल का वर्णन हमें विद्यारण्य के ग्रन्थ 'संगीत-सार' में मिलता है जिसमें 15 मेलों के अन्तर्गत उस समय के 50 जन्य रागों को सम्मिलित किया है। इस सम्बन्ध में अधिकांश विद्वानों का मत है कि विद्यारण्य इस वर्गीकरण के आरम्भकर्ता है, ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर आचार्य बृहस्पति ने विद्यारण्य को एक उच्च स्तर का विद्वान और राजनैतिज्ञ प्रमाणित किया है। उनके अनुसार ऐसे सूक्ष्म चिन्तक से नवीन उद्भावनाओं की सम्भावना करना नितांत तर्कसंगत प्रतीत होता है। श्री के. वासुदेव शास्त्री ने अपने ग्रंथ संगीत शास्त्र में इस विषय में कहा है कि "विद्यारण्य ने भारत के कोने-कोने से प्रचलित रागों का संकलन किया। उन्हें यह महसूस हुआ कि लक्ष्य तो विद्यमान है लेकिन लक्षणों में विकार आ गया है। सम्पूर्ण उपलब्ध रागों को सम्मुख रखकर गहन-चिन्तन के पश्चात उनकी प्रकृति और विकृति को सम्मुख रखते हुए पचास रागों को पन्द्रह श्रेणियों में विभाजित किया जिन्हें मेल की संज्ञा दी।" इस आधार पर विद्यारण्य को मेल पद्धति का आरम्भकर्ता मान लेना उचित प्रतीत होता है। विद्यारण्य के 15 मेलों का वर्णन उनके परवर्ती विद्वान 'गोविंद दीक्षित' की "संगीत-सुधा" में मिलता है, वे इस प्रकार है- **नट, गुर्जरी, वराटी, श्री, भैरवी, शंकराभरण, अहीरी, बसन्तभैरवी, सामन्त, कामौदी, मुखारी, शुद्ध रामक्रिया, केदारगौल, हेज्जुजी, देक्षाक्षी।**[v]

मेल राग वर्गीकरण पद्धति 14 वी शताब्दी में आरम्भ हुई और तब से अब तक अनेक परिवर्तनों सहित बराबर प्रचार में बनी हुई है। विद्यारण्य ने 15 मेल माने राममात्य ने प्रतिनिधि सिद्धान्त के अनुसार मेलो की संख्या 15 तथा वैणिकों के लिए 20 स्वीकृत की और उनके अन्तर्गत अपने समय के 64 रागों को विभिक्त किया। अपने 20 मेलों में विद्यारण्य के लगभग सभी मेलो को उन्होने सम्मिलित किया है।[vi] मेलों की संख्या सोमनाथ तक 23 तक जा पहुँची और उसके अन्तर्गत 76 रागों को विभक्त किया। मेल की अत्यन्त उपयुक्त परिभाषा सोमनाथ कृत "राग विबोध" में मिलती हैं **"मिलन्ति वर्गीभवन्ति रागा यश्रेति तदाश्रयाः स्वर संस्थान विशेषा मेलाः थाट इति भाषायाम**

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :9.014(2025); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parametres of UGC by IJMER)
Volume:14, Issue:8(4), August, 2025
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed : Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available : www.ijmer.in

ते कथ्यन्ते।"[vii] सोमनाथ की इस परिभाषा में ऐसे स्वर समूह को मेल कहा गया है जिससे अनेक राग बन सकें। दूसरे मेल और संस्थान तथा लोकभाषा में व्यवहृत थाट, इन तीनों का बह एक ही अर्थ मानते हैं ।

इस प्रकार रागों की बढ़ती हुई संख्या उनमें लगने वाले स्वर - वैचित्र्य के कारण मेलों की वृद्धि की अनिवार्यता बराबर बनी रही। फलस्वरूप [17वीं शताब्दी के विद्वान शुद्ध और विकृत कुल 16 स्वर नामों को सम्मुख रख गणितानुसार अधिक से अधिक मेल बनाने की पद्धति पर विचार करने लगे।

मेल सिद्धांत को एक नया मोड़ देने का श्रेय प्रसिद्ध विद्वान पं. व्यंकटमखी को जाता है। जिन्होंने सप्तक के 12 स्वरों को उत्तरांग और पूर्वांग के आधार पर गणिताधारित 6 चक्र उत्तरांग एवं 6 चक्र पूर्वांग में विभाजित किया। तत्पश्चात् इनको एक दूसरे चक्रों से जोड़कर शुद्ध मध्यम वाले 36 मेल एवं शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम प्रयोग कर 36 मेलों का निर्माण किया। इसी प्रकार पं. व्यंक्टमखी ने 72 मेलो की रचना की है।[viii]

पं° व्यंक्टमुखी के पश्चात् तेन्जौर के राजा तुलजाजीराव भौंसले (1729-1735 ईसवी) ने अपने ग्रन्थ 'संगीत सारामृत' में अपनी एक मेल पद्धति प्रस्तुत की जोकि पूर्णतः व्यंक्टमुखी द्वारा प्रणीत 72 मेल पद्धति का अनुकरण है। इन्होंने पं° व्यंक्टमुखी के 72 मेलों का निरूपण न करते हुए केवल उन्हीं मेलों का वर्णन किया है जो इनके अनुसार उस समय प्रयोग में आ रहे रागों के लिए समुचित थे। ऐसे मेलों की संख्या 21 बताई और इनके अन्तर्गत 112 रागों को स्वीकृत किया।[ix] यद्यपि इस सम्बन्ध में काफी मतभेद बने रहे, अन्ततोगत्वा व्यकंटमुखी द्वारा स्वीकृत 72 मेल अपना लिए गए।

पद्धति की यह परम्परा अब तक भी कर्नाटक संगीत में प्रचार में है। इस समय लगभग **19** मेल ऐसे है जिनमें दक्षिण के सभी प्रचलित राग विभाजित किये जाते हैं। स्वयं व्यकंटमुखी ने अपने 55 रागों का विभाजन 19 मेलों में किया है ।

3.2 उत्तर भारतीय मेलवादी ग्रंथकार

दक्षिण के समान उत्तर भारत में भी मेल-राग वर्गीकरण का प्रचार 14वीं शताब्दी से होने लगा था। यद्यपि के.वासुदेव शास्त्री ने विद्यारण्य को दाक्षिणव्य मेल वादियों की श्रेणी में रखा है लेकिन उत्तर- भारतीय मेल पद्धति के प्रेरणास्रोत भी वही कहे जा सकते हैं। उनके पश्चात नाम आता है पुण्डरीक विठ्ठल का जो की आरम्भ में दक्षिण के ही निवासी थे, परन्तु बाद में उत्तर में आकर बस गए। उन्होंने अपने ग्रंथों- 'सद्राग चंद्रोदय' में 19 मेलों के अंतर्गत व 'राग मंजरी' में 20 मेलों के अंतर्गत 64 रागों का विभाजन किया है ।[x] इनके पश्चात एतिहासिक क्रम में पं० अहोबाल एवं श्रीनिवास का नाम लिया जा सकता है। मेल की अति सुन्दर परिभाषा प० अहोबल ने अपने ग्रंथ 'संगीत पारिजात' में प्रस्तुत की है-**"मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यांजन शक्तिमान्।"**[xi xii] अर्थात मेल वह स्वर समूह है जो विभिन्न रागों को अभिव्यक्त करने की शक्ति रखता है। इनके अतिरिक्त श्रीनिवास, हृदय नारायण देव, श्री कण्ठ तथा प० लोचन आदि ने भी अपने-अपने ग्रंथों में मेल की चर्चा की है। श्री कण्ठ तथा पं° लोचन ने अपने ग्रंथों में मेल के स्थान पर संस्थान शब्द का प्रयोग किया है। पं° लोचन ने राग तरंगिणी में 12 संस्थानों में 88 रागों को स्थान दिया है।[xiii] कुछ विद्वानों का मानना की मेल पद्धति ईरानी संगीत की मुकाम या संस्थान पद्धति का अनुकरण है और कुछ का मत है की ये मध्य कालीन देशी वर्गीकरण के परिवर्तित रूप पर आधारित है ।

4 **मेल अथवा थाट-प्रणाली का आधुनिक स्वरूप तथा प० भातखण्डे**: अंग्रेजी शासन के पश्चात् जब पुनः युग-परिवर्तन हुआ, हर विषय का फिर से पुनर्गठन करने की आवश्यकता अनुभव हुई तो संगीत के क्षेत्र में भी सर्वांगीण परिवर्तन हुए। मेल पद्धति का यही क्रमिक इतिहास मुहम्मद रज़ा की 'नग्माते आसफ़ी' से होता हुआ प० भातखण्डे तक जा पहुंचा। सन् 1813 ई. में मुहम्मद रज़ा ने 'नग्माते आसफ़ी' की रचना की। उनकी सबसे पहली मौलिकता यह है कि वर्तमान शुद्ध सप्तक बिलावल को उन्होंने शुद्ध ग्राम स्वीकार किया। संक्षिप्ततः यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि शुद्ध ग्राम की इस परिवर्तित धारणा को पं. भातखण्डे द्वारा स्वीकृति देना सबसे प्रमुख ऐसा कारण है जिससे उत्तर भारत में प्रचलित सम्पूर्ण रागों को दस थाटों में विभाजित किया गया। भातखण्डे जी स्वयं यह मानते हैं कि उन्होंने व्यंक्टमुखी के 72 मेलों में से 10 मेल चुने हैं।[xiv] उनके मतानुसार इन्हीं के अन्तर्गत उत्तर भारत के प्रचलित और अप्रचलित लगभग 200 राग आसानी से विभाजित किये जा सकते थे। इस प्रकार उन्होंने शुद्ध थाट, सप्तक या प्रथम मेल बिलावल को मानते हुए, दक्षिण से 10 मेल चुनने के बाद थाट नियम अपने ही ढंग से बनाए, अतः यह उनकी निजी मौलिकता कही जा सकती है। उनके ये नियम इस प्रकार हैं-

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :9.014(2025); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parametres of UGC by IJMER)
Volume:14, Issue:8(4), August, 2025
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed : Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available : www.ijmer.in

1. ठाठ में हमेशा सात स्वर ही होने चाहिए।
2. वे सात स्वर 'स, रे, ग, म, प, ध, नि' - इसी क्रम से तथा इन्हीं नामों से होने चाहिए।
3. ठाठ में आरोह-अवरोह का होना आवश्यक नहीं है।
4. ठाठ में रंजकता होना भी आवश्यक नहीं है।
5. किसी ठाठ को जानने-पहचानने के लिए उसमें से निकले हुए किसी प्रसिद्ध राग को उसी ठाठ का नाम देने की प्रथा है, चाहे उसमें सातों स्वर लगते हों या कम।[xv]

पं. भातखण्डे जी के मतानुसार थाट हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत के आधार स्तम्भ हैं। किसी भी राग के थाट से हमें यह पता चलता है कि उस राग में कौन कौन से स्वर लगेंगे।

पं. भातखण्डे जी 'श्रीमल्लक्ष्य संगीतम् में दस थाटों का वर्णन इस प्रकार किया है –

कल्याणमेलकस्त्वाद्यो वेलावली द्वितीयकः ।

खमाजाख्यस्तृतीयः स्यात् भैरवख्यश्चतुर्थकः ।।

पंचमः पूर्विकासंज्ञः षष्ठः स्यान्माखाभिद्यः ।

सप्तमः काफिसंज्ञः स्यादासावरी तथाष्टमः ।।

नवमो भैरवीमेलो दशामस्तोडिकाह्वयः ।

इत्येते दधामेलास्तेरागात्यादनहेतवः ।।[xvi]

अर्थात् रागोत्पत्ति के लिए दस थाट इस प्रकार हैं-

1. कल्याणी (कल्याण), 2. वेलावेली (विलावल)

3. खमाज, 4. भैरव, 5. पूर्विका (पूर्वी)

6. मारवा, 7. काफी, 8. आसावरी

9. भैरवी तथा, 10. तोड़िका (तोड़ी)

5 निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि थाट के बीजारोपण से लेकर वर्तमान काल तक (प्राय 14वीं शताब्दी से लेकर) इस थाट-राग वर्गीकरण पद्धति के पूर्ण रूप से विकसित होने में कई वर्ष लगे हैं। धीरे-धीरे परिवर्तन की इस धारा में "थाट राग" वर्गीकरण का वर्तमान युग में पूर्ण रूप से विकास हुआ। मेल अथवा थाट वर्गीकरण प्रणाली में सबसे मुख्य सिद्धांत है- स्वर साम्य। इस स्वर साम्य के कारण ही किसी भी राग के बाह्य पक्ष का आभास हमें प्राप्त होता है। 'थाट-राग' वर्गीकरण प्रणाली के विकास के लिए उत्तर भारतीय संगीत एवं दक्षिण भारतीय संगीत दोनों के संगीत विद्वानों ने समान रूप से योगदान दिया और यह दोनों संगीत प्रणाली 'थाट-राग' वर्गीकरण के लिए व्यापक रूप से मान्य है। परन्तु आज के युग में प्रचलित सभी रागों का वर्गीकरण इन दस थाटों के अन्तर्गत रखना अनुपयुक्त है। 'थाट राग वर्गीकरण पद्धति के अनुसार किसी भी थाट में एक स्वर के दो रूप नहीं हो सकते, किन्तु हिन्दुस्तानी संगीत में अनेक ऐसे राग हैं, जिनमें एक स्वर के दोनों रूप प्रयोग किये जाते हैं । सिद्धांत के अनुसार 'ललित' राग, 'जयजयवंती' राग 'थाट-

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :9.014(2025); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parametres of UGC by IJMER)
Volume:14, Issue:8(4), August, 2025
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed : Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available : www.ijmer.in

राग' वर्गीकरण के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते, परंतु इनका वर्गीकरण थाट के अंतर्गत स्वर साम्य के आधार पर ना होकर चलन के आधार पर किया गया है। स्वयं पं. भातखण्डे जी जानते थे की इस पद्धति में क्या कमियाँ हैं। उन्होंने 'भातखण्डे संगीत शास्त्र' (चौथा भाग) ग्रंथ में स्वीकारा है की उन्होंने स्थूल दृष्टि से समस्त राग मुख्य तीन वर्गों में विभाजित किए हैं।

- "जिन रागों में रे ध तथा ग स्वर तीव्र रहते हैं।
- जिन रागों में रे कोमल तथा ग नि तीव्र रहते हैं।
- जिन रागों में ग तथा नि कोमल रहते हैं।

यह भी मुझे दिखाई दिया कि प्रचार में कुछ रागों के द्विरूप स्वर आते हैं, परन्तु कुल मिलाकर उन रागों के चलन एवं रचना को देखते हुए मेरी समझ से उनके पृथक वर्ग करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"[xvii]परन्तु कुछ राग ऐसे भी है जो स्वर की दृष्टि से किसी भी थाट में नहीं आते। जैसे - अहीर भैरव, बैरागी भैरव, पट्दीप आदि हैं। अधिकाधिक रागों को कम थाटों के अन्तर्गत रखने के कारण कुछ रागों के साथ अन्याय अवश्य हुआ है ये कहना अनुचित न होगा ।

स्व. भातखण्डे जी की इस पद्धति का प्रचार तो हुआ लेकिन तीखी आलोचना भी कम नहीं हुई। बहुत से प्रचलित और अप्रचलित राग इस वर्गीकरण के अन्तर्गत नहीं आ सकते। परमेल प्रवेशक सिद्धान्त बनाकर स्वयं भातखण्डे जी ने इस कमी को दूर करने के कुछ प्रयास किये। लेकिन विरोधी समीक्षकों के अनुसार अभाव तो फिर भी अभाव ही बने रहे । प० ओकारनाथ ठाकुर ने थाट राग वर्गीकरण के जन्य जनक भाव को स्वीकार नहीं किया। उन्होने इसके अनेक कारण बताए हैं - स्वर-साम्य का अभाव, ऐसे स्वरों का बाहुल्य जो थाट या जनक में हो ही नहीं, एक या एक से अधिक ऐसे स्वरों का प्रयोग जो मूल थाट में न हो आदि बाते इनके थाट-राग वर्गीकरण की समीक्षा का हिस्सा है।

पद्धति चाहे कैसी भी हो, जब वह प्रचार में आ जाती है और एक परम्परा का रूप धारण कर लेती है तब उसे सहसा नकार देना ठोस कारणों के होते हुए भी असम्भव सा हो जाता है। वास्तव में प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए यह प्रणाली सहज बोधगाम्य हो सकती है

संदर्भ सूची

[i] संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत, चौधरी, सुभाष रानी, प्रथम संस्करण 2002, पृ० 99,100

[ii]संगीत भाष्य , बंदोपाध्याय श्रीपद, प्रथम संस्करण 1963, पृ०140
[iii] वही , पृ० 139
[iv] संगीत शस्त्र , शास्त्री वासुदेव, के. द्वितीय संस्करण 1968,पृ० 152
[v] संगीतांजली भाग-6, ठाकुर, ओंकारनाथ, 1968 पृ० 107
[vi] स्वरमेलकलानिधी, रामामात्य, अनुवादक- विशंभर नाथ भट्ट, द्वितीय संस्करण 1963 पृ० 27, 28
[vii] रागविबोध,सोमनाथ,1945 पृ० 79
[viii] संगीत शास्त्र, शास्त्री वासुदेव,के. द्वितीय संस्करण 1968,पृ० 145
[ix] संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, भातखण्डे, विष्णु नारायण, 1958, पृ. **115-119**
[x] संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, भातखण्डे विष्णु नारायण, **1958** पृ. **59, 60, 69, 70**
[xi] संगीत पारिजात, अहोबल, अनुवादक -कलिंद तृतीय संस्करण 1971 पृ. **96-145**

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :9.014(2025); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parametres of UGC by IJMER)
Volume:14, Issue:8(4), August, 2025
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed : Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available : www.ijmer.in

Cover Page

[xii] संगीत विशारद, वसंत, पृ० 157
[xiii] संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, भातखण्डे, विष्णु नारायण, 1958 पृ. **26-31**
[xiv] स्वीकुर्मो दशसङ्ख्यांन्स्तान् लक्ष्यवत्र्मनि विश्रुतान्।।2।।श्री मल्लक्ष्यसंगीतम्, भातखण्डे विष्णु नारायण, प्रथम संस्करण 1981 पृ.193
[xv] क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग **2, 1994** पृष्ठ **12-13**

[xvi] श्री मल्लक्ष्यसंगीतम्, भातखण्डे विष्णु नारायण, प्रथम संस्करण 1981, पृ.197
[xvii] भातखण्डे संगीत शास्त्र, भाग-4, भातखण्डे विष्णु नारायण, प्रथम संस्करण 1957, पृ 7